मैसर्स पुरोहित और कंपनी

बनाम

खातूनबी व अन्य

(सिविल अपील संख्या 2555/2017)

09 फरवरी, 2017

[जगदीश सिंह खेहर, सीजेआई, एन.वी. रमना और डॉ० डी.वाई. चंद्रचूड़, जे. जे.]

विलम्ब/विलंबः

28 साल का विलंब-मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के तहत दावा याचिका दायर करने में-नीचे के न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए ग्रहण कर लिया गया कि 1988, अधिनियम क्षतिपूर्ति के लिए दावा करने के लिए परिसीमा प्रदान नहीं करता है-अपील पर, अभिनिर्धारितः भले ही 1988 के अधिनियम के तहत कोई परिसीमा अवधि निर्धारित नहीं की गई है, दावा किया जा सकता है और वास्तविक माना जाता है, जब तक यह एक जीवित और चलित दावा है-दावा केवल तर्कसंगत समय के भीतर उठाया जा सकता है-तर्कसंगतता का सवाल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा-वर्तमान मामले में, 28 साल की देरी को प्रथम दृष्टया तर्कसंगत अवधि के रूप में नहीं माना जा सकता है-दावा, इस मामले के तथ्यों और

परिस्थितियों में पुराना था और इसे मृत दावे के रूप में माना जाना चाहिए था- मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 166(3).

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया

1.1 मोटर वाहन अधिनियम, 1939 की धारा 110ए के प्रावधान के अवलोकन से पता चलता है कि मुआवजे का दावा करने के लिए छह महीने (दुर्घटना की तारीख से) की परिसीमा अवधि का प्रावधान किया गया था। उत्तराधिकारी विधान, अर्थात् मोटर वाहन अधिनियम, 1988, धारा 166(3), जैसा कि मूल रूप से अधिनियमित किया गया था, में भी दावा याचिका दायर करने के लिए छह महीने की परिसीमा अवधि का प्रावधान किया गया था। हालांकि इस अवसर पर, बारह महीने (दुर्घटना घटित होने की दिनांक से) के बाद मोटर दुर्घटना से उत्पन्न होने वाली दावा याचिका पर विचार करने पर एक रोक लगाई थी। जाहिर है, 1988 के अधिनियम की धारा 166 (3) के माध्यम से प्रदान की गई परिसीमा अवधि में यह प्रदर्शित करके कि इस तरह की देरी के लिए पर्याप्त कारण था, बारह महीने की छूट दी जा सकती है। मोटर वाहन अधिनियम, 1988 से धारा 166(3) को 14-11-1994 से हटा देने से उपरोक्त धारा 166(3) के तहत प्रदान की गई परिसीमा अवधि को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया था। [पैरा 4, 5, 6] [5-सी-ई, 6-एफ-1]

1.2 भले ही, मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 में संशोधन, जिससे धारा 166 की उप-धारा (3) को हटा दिया गया, के बाद कोई परिसीमा अवधि निर्धारित नहीं है, फिर भी यह निर्धारित करना

अनिवार्य होगा कि क्या जब दावेदार ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से संपर्क किया था, तब दावा एक जीवित और चलित दावा था। मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष उठाए गए दावे को वास्तविक माना जा सकता है, जब तक कि यह एक जीवित और चलित दावा है। ऐसा नहीं है कि दुर्घटना होने के पश्चात किसी भी समय मुआवजे के लिए दावा करने के लिए मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण में पहुंच सकते हैं। संबंधित व्यक्ति को तर्कसंगत समय के भीतर न्यायाधिकरण से संपर्क करना चाहिए। [पैरा 12 और 13] [15-डी, जी-एच]

1.3 तर्कसंगतता का सवाल स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। 28 साल की देरी को, किसी अन्य तथ्य के सन्दर्भ के बिना भी, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से संपर्क करने के लिए प्रथम दृष्टया तर्कसंगत अवधि नहीं माना जा सकता है। 28 साल की अवधि के बाद न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाने के लिए प्रत्यर्थियों के इस स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ता गरीब व्यक्ति हैं और उन्हें कानून के बारे में कोई जानकारी नहीं है। निस्संदेह, जब प्रत्यर्थियों ने न्यायाधिकरण में दिनांक 23-02-2015 को दावा याचिका दायर की, उस समय इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में दावा पुराना था और इसे एक मृत दावे के रूप में माना जाना चाहिए था। इस प्रकार, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण के समक्ष प्रत्यर्थियों द्वारा किया गया दावा एक जीवित दावा नहीं था, जब प्रत्यर्थियों

ने उक्त न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाया। [पैरा 14, 15, 16] [16-ए-बी, डी-ई]

निगम बैंक बनाम नवीन जे. शाह (2000) 2 एससीसी 628; हरियाणा राज्य सहकारी समिति भूमि विकास बैंक बनाम नीलम (2005) 5 एससीसी 91 : [2005] 2 एस.सी.आर. 424 - भरोसा किया गया।

धन्नालाल बनाम डी.पी. विजयवर्गीय [1996] 4 एस.सी.सी. 652 : [1996] 2 एस.सी.आर. 417; द न्यू इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी लि. बनाम पद्मा (2003) 7 एससीसी 713: [2003] 3 सप्लीमेंट्री एस.सी.आर. 677-अलग किया गया।

2. अपीलकर्ता को प्रत्यर्थीगण को मुकदमेबाजी खर्च के लिए 25,000/- रुपये की राशि जमा करने का निर्देश दिया गया था। उपरोक्त राशि वास्तव में जमा कराई गई थी। चूंकि राशि जमा कराई गई थी और प्रत्यर्थीगण को देय थी, हम मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में रजिस्ट्री को यह आदेशित करना उचित मानते हैं कि उपरोक्त 25000/- रूपये की राशि प्रत्यर्थी संख्या 1 के नाम से चैक द्वारा प्रत्यर्थीगण को हस्तांतरित कर दी जावे। [पैरा 17] [16-एफ-जी]

मामला कानून संदर्भ

| | | |
|---|---|---|
| [1996] 2 सप्लीमेंट्री एससीआर 417 | अलग किया गया | पैरा 7 |
| [2003] 3 सप्लीमेंट्री एससीआर 677 | अलग किया गया | पैरा 7 |
| (2000) 2 एस.सी.सी. 628 | भरोसा किया गया | पैरा 10 |
| [2005] 2 एससीआर 424 | भरोसा किया गया | पैरा 11 |

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णयः सिविल अपील सं. 2555/2017

बोम्बे उच्च न्यायालय नागपुर पीठ, नागपुर की रिट याचिका सं. 3647/2007 में के निर्णय और आदेश दिनांक 07.07.2015 से

श्री अंकुर मित्तल, अधिवक्ता, अपीलार्थियों के लिए।

सुश्री अनघा एस. देसाई, अधिवक्ता, उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय जगदीश सिंह खेहर, सीजेआई द्वारा दिया गया था

1. उभय पक्षकारान के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. प्रत्यर्थियों की बेटी की एक मोटर दुर्घटना में दिनांक 02-02-1977 को मृत्यु हो गई। मोटर दुर्घटना जिसमें प्रत्यर्थियों की बेटी की मृत्यु

हो गयी थी, के कारण मुआवजे के मांग के लिए मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (इसके बाद '1988 अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 166 के तहत एक दावा याचिका दिनांक 23-02-2005 को दायर की गई थी। मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण (इसके बाद 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) ने उपरोक्त दावे पर विचार किया। प्रश्नगत दुर्घटना के 28 वर्षों बाद दावा दर्ज कराने के आधार पर दावा याचिका को खारिज किए जाने की प्रार्थना की गई, जो कि अस्वीकार की गई। इन परिस्थितियों में मैसर्स पुरोहित एंड कंपनी। [यहां याचिकाकर्ता] ने उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जहाँ मामले पर फिर से निर्णय लिया गया। पुनः, याचिकाकर्ता की ओर से एक प्रार्थना की गई, कि दावा बहुत देर से किया गया था और यह एक जीवित दावा नहीं था। उच्च न्यायालय ने संक्षिप्त आधार पर दावा याचिका की न्यायसंगतता को बरकरार रखा कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के तहत मुआवजा हेतु दावा करने के लिए कोई परीसीमाकाल प्रदान नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा 07.07.2015 को दिए हुए निर्णय को मैसर्स पुरोहित एंड कंपनी द्वारा इस याचिका से अपील करने के लिए विशेष अनुमति के जरिये चुनौती दी गई।

3. अनुमति दे दी गई।

4. विवादित फैसले को चुनौती देते हुए, पहली बार में मोटर वाहन अधिनियम, 1939 (इसके बाद '1939 अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की

धारा 110-ए का संदर्भ यह प्रदर्शित करने के लिए दिया गया था कि उस तारीख को जब संदर्भित दुर्घटना हुई थी, परिसीमाकाल का प्रावधान किया गया था। उपर्युक्त धारा 110ए को नीचे बताया जा रहा हैः

"110-ए. प्रतिकर के लिए आवेदन-(1) धारा 110 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रकार की दुर्घटना से उद्भूत प्रतिकर के लिए आवेदन निम्नलिखित द्वारा किया जा सकेगा, अर्थात्:-

(क) उस व्यक्ति द्वारा, जिसे क्षति हुई है; या

(क क) संपत्ति के स्वामी द्वारा; या

(ख) जब दुर्घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है, तब मृतक के सभी या किसी विधिक प्रतिनिधि द्वारा; या

(ग) जिस व्यक्ति को क्षति पहुंची है उसके द्वारा अथवा सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी अभिकर्ता द्वारा अथवा मृतक के सभी या किसी विधि प्रतिनिधि द्वारा:

परंतु जहां प्रतिकर के लिए किसी आवेदन में मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुए हैं वहां वह आवेदन मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधियों की ओर से या उनके फायदे के लिए किया जाएगा और जो विधिक प्रतिनिधि ऐसे सम्मिलित नहीं हुए हैं उन्हें आवेदन के प्रत्यर्थियों के रूप में पक्षकार बनाया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन, उस दावा अधिकरण को जिसकी उस क्षेत्र पर अधिकारिता थी जिसमें दुर्घटना हुई है, किया जाएगा और वह ऐसे प्रारूप में होगा और उसमें ऐसी विशिष्टियां होंगी जो विहित की जाएं:

परंतु जहां धारा 92-ए के अधीन प्रतिकर के लिए कोई दावा ऐसे आवेदन में किया जाता है वहां उस आवेदन में आवेदक के हस्ताक्षर के ठीक पूर्व उस आशय का एक पृथक् कथन होगा।

3) प्रतिकर के लिए कोई आवेदन तब तक ग्रहण नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे दुर्घटना के होने से छह मास के भीतर प्रस्तुत न किया गया हो।

परन्तु दावा अधिकरण उक्त छह महीने की अवधि की समाप्ति के बाद आवेदन को ग्रहण कर सकता है यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि आवेदनकर्ता पर्याप्त कारण से विहित अवधि में आवेदन करने से रोका गया था।"

अधिनियम, 1939 की धारा 110-ए के प्रावधान के अवलोकन से प्रकट होता है कि मुआवजे के लिए दावा करने के लिए छह माह (दुर्घटना घटित होने की दिनांक से) का परिसीमाकाल प्रावधानित है।

5. उत्तराधिकारी विधान, अर्थात् मोटर वाहन अधिनियम, 1988, धारा 166 (3), जैसा कि मूल रूप से अधिनियमित किया गया था, ने भी दावा याचिका दायर करने के लिए छह महीने की परिसीमा अवधि का प्रावधान किया। उपरोक्त धारा 166 को नीचे बताया गया हैः

"166. प्रतिकर के लिए आवेदन-(1) धारा 165 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रकार की दुर्घटना से उद्भूत प्रतिकर के लिए आवेदन निम्नलिखित द्वारा किया जा सकेगा, अर्थात्:-

(क) उस व्यक्ति द्वारा, जिसे क्षति हुई है; या

(ख) संपत्ति के स्वामी द्वारा; या

(ग) जब दुर्घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है, तब मृतक के सभी या किसी विधिक प्रतिनिधि द्वारा; या

(घ) जिस व्यक्ति को क्षति पहुंची है उसके द्वारा अथवा सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी अभिकर्ता द्वारा अथवा मृतक के सभी या किसी विधि प्रतिनिधि द्वारा:

परंतु जहां प्रतिकर के लिए किसी आवेदन में मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुए हैं वहां वह आवेदन मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधियों की ओर से या उनके फायदे के लिए किया जाएगा और जो विधिक

प्रतिनिधि ऐसे सम्मिलित नहीं हुए हैं उन्हें आवेदन के प्रत्यर्थियों के रूप में पक्षकार बनाया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन, दावाकर्ता के विकल्प पर, उस दावा अधिकरण को जिसकी उस क्षेत्र पर अधिकारिता थी जिसमें दुर्घटना हुई है, अथवा उस दावा अधिकरण को जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर दावाकर्ता निवास करता है या कारबार करता है अथवा जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रतिवादी निवास करता है, किया जाएगा और वह ऐसे प्रारूप में होगा और उसमें ऐसी विशिष्टियां होंगी जो विहित की जाएं:

परंतु जहां धारा 140 के अधीन प्रतिकर के लिए कोई दावा ऐसे आवेदन में नहीं किया जाता है वहां उस आवेदन में आवेदक के हस्ताक्षर के ठीक पूर्व उस आशय का एक पृथक् कथन होगा।

3) प्रतिकर के लिए कोई आवेदन तब तक ग्रहण नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे दुर्घटना के होने से छह मास के भीतर प्रस्तुत न किया गया हो।

परन्तु दावा अधिकरण, उक्त छह मास की अवधि की समाप्ति के बाद लेकिन बारह मास के बाद नहीं, आवेदन को ग्रहण कर सकता है यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि आवेदनकर्ता पर्याप्त कारण से विहित अवधि में आवेदन करने से रोका गया था।

(4) दावा अधिकरण, धारा 158 की उपधारा (6) के अधीन उसको भेजी गई दुर्घटनाओं की किसी रिपोर्ट को इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर के लिए आवेदन के रूप में मानेगा।"

(हमारे द्वारा जोर दिया)

ऊपर बताए गए अधिनियम, 1988 की धारा 166 के मूल प्रावधान के अवलोकन से पता चलता है कि एक बार फिर छह महीने (दुर्घटना होने की तारीख से) की परिसीमा अवधि का प्रावधान किया गया था। हालाँकि, इस अवसर पर, बारह महीने (दुर्घटना घटित होने की तारीख से) के बाद मोटर दुर्घटना से उत्पन्न होने वाली दावा याचिका को ग्रहण करने पर रोक लगाई गई थी। जाहिर है, 1988 के अधिनियम की धारा 166 (3) के माध्यम से प्रदान की गई परिसीमा अवधि में बारह महीने तक, यह प्रदर्शित करके कि इस तरह की देरी के लिए पर्याप्त कारण था, ढील दी जा सकती है।

6. तथापि, यह उल्लेख करना उचित होगा कि दिनांक 14.11.1994 को मोटर वाहन अधिनियम, 1988 से धारा 166 (3) के हटाए जाने के बाद से उपरोक्त धारा 166 (3) के तहत प्रदान की गई परिसीमा अवधि को पूरी तरह से समाप्त कर दिया गया था। इस अपील में विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न हुआ है, वह 1988 के अधिनियम की धारा 166 की उप-धारा (3) का लोप का परिणाम है। उक्त लोप का प्रभाव दावेदार को किसी भी समय और जब भी वह चाहे दावा दायर करने की अनुमति देने का होता है ? एक दशक के बाद भी!

7. प्रत्यर्थियों-दावेदारों का परिसीमा अवधि को पार करने का तर्क दो निर्णयों पर आधारित था। प्रथमतः, यह धन्नालाल बनाम डी.पी. विजयवर्गीय (1996) 4 एससीसी 652 के निर्णय पर आधारित है, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया थाः

> "7. इस पृष्ठभूमि में, अब इस बात की जांच की जानी है कि अधिनियम की धारा 166 की उप-धारा (3) को हटाने का क्या प्रभाव है। संशोधित अधिनियम से यह प्रतीत नहीं होता है कि उक्त उप-धारा (3) को पूर्वव्यापी रूप से हटा दिया गया है। लेकिन साथ ही, संशोधन अधिनियम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि धारा 166 की उप-धारा (3) को हटाने का लाभ लंबित दावा याचिकाओं पर नहीं

दिया जाना चाहिए, जहां परीसीमा का बिन्दू उठाया गया है। अधिनियम की धारा 166 से उप-धारा (3) को हटाने के प्रभाव एक उदाहरण द्वारा परखा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई दुर्घटना 14.11.1994 से दो साल पहले हुई, जब उप-धारा (3) को धारा 166 से हटा दिया गया था। किसी न किसी कारण से पीड़ित या पीड़ित के उत्तराधिकारियों द्वारा 14.11.1994 तक कोई दावा याचिका दायर नहीं की गई थी। क्या ऐसी दुर्घटना के संबंध में 14.11.1994 के बाद दावा याचिका दायर नहीं की जा सकती है? क्या 14.11.1994 के बाद दायर की गई दावा याचिका को न्यायाधिकरण द्वारा परिसीमा के आधार पर यह कहते हुए खारिज किया जा सकता है कि धारा 166 की उप-धारा (3) में विहित बारह महीने की अवधि के समाप्त होने से दावा याचिका को पेश करने का अधिकार समाप्त हो गया था और धारा 166 की उप-धारा (3) के विलोपन (14.11.1994 से प्रभावी) के बाद इसे पुनर्जीवित नहीं किया जाएगा। जब धारा 166 की उपधारा (3) को हटा दिया गया है, तब न्यायाधिकरण को उस तारीख को ध्यान में रखे बिना एक दावा याचिका पर विचार करना होगा जिस दिन ऐसी दुर्घटना हुई थी। दावा याचिकाओं को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता

है कि ऐसी दावा याचिकाएं धारा 166 की उप-धारा (3) के लागू होने के समय पर परिसीमा अवधि से बाधित थी। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि दुर्घटनाओं के पीड़ितों और पीड़ितों की मृत्यु होने पर उनके उत्तराधिकारियों के हितों की रक्षा के लिए संसद ने समय-समय पर पुराने अधिनियम में संशोधन पेश किए और साथ ही नये अधिनियम में भी संशोधन किए। अधिनियम में ऐसा ही एक संशोधन उपरोक्त 1994 के संशोधन अधिनियम 54 द्वारा धारा 158 की उप-धारा (6) को प्रतिस्थापित करके पेश किया गया है, जो प्रदान करता हैः

"158. (6) जैसे ही किसी ऐसी दुर्घटना की बाबत जिसमें किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति अंतर्ग्रस्त है, कोई इत्तिला पुलिस अधिकारी द्वारा अभिलिखित की जाती है या कोई रिपोर्ट इस धारा के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा पूरी की जाती है, वैसे ही पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी, उसकी एक प्रति, यथास्थिति, इत्तिला अभिलिखित करने की तारीख से तीन दिन के भीतर या ऐसी रिपोर्ट पूरी होने पर, अधिकारिता, रखने वाले दावा अधिकरण को और उसकी एक प्रति संबंधित बीमाकर्ता को भेजेगा और जहां एक प्रति स्वामी को उपलब्ध कराई जाती है, वहां वह भी ऐसी रिपोर्ट

की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर उसे दावा अधिकरण और बीमाकर्ता को भेजेगा।"

अधिनियम की धारा 158 की उपधारा (6) के मद्देनजर पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी को अधिकार क्षेत्र वाले ट्रिब्यूनल को दुर्घटना के संबंध में सूचना/रिपोर्ट की एक प्रति अग्रेषित करने का आदेश दिया गया है। इसकी एक प्रति संबंधित बीमाकर्ता को भी भेजनी होगी। इसमें यह भी आवश्यक है कि जहां वाहन के मालिक को एक प्रति उपलब्ध कराई जाती है, वह ऐसी प्रति प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर उसे दावा न्यायाधिकरण और बीमाकर्ता को अग्रेषित करेगा। इस पृष्ठभूमि में, धारा 166 से उप-धारा (3) को हटाने को पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए ताकि संसद द्वारा उक्त धारा को हटाने का उद्देश्य विफल न हो। यदि दुर्घटना का शिकार व्यक्ति या मृत पीड़ित के वारिस मुआवजे के लिए दावा प्रस्तुत कर सकते हैं, यद्यपि निर्धारित परिसीमा अवधि की समाप्ति के कारण पहले प्रस्तुत नहीं किया था, तो पीड़ित या मृतक के वारिस बदतर स्थिति में कैसे होंगे यदि दावा याचिका प्रस्तुती में देरी को माफ करने का प्रश्न या तो ट्रिब्यूनल, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित है। वर्तमान अपील ऐसा ही एक मामला है। अपीलकर्ता ट्रिब्यूनल से लेकर इस न्यायालय तक गुहार लगा चुका है। प्रश्नगत दुर्घटना के संबंध में मुआवज़ा पाने के उसके अधिकार का उत्तरदाताओं द्वारा इसे प्रस्तुत करने में देरी के आधार पर विरोध किया जा रहा है। यदि उसने 04.12.1990 को हुई दुर्घटना के संबंध

में 14.11.1994 तक दावे के लिए कोई याचिका दायर नहीं की थी, तो संशोधन अधिनियम के अनुसार वह ऐसी दावा याचिका दायर करने का हकदार हो गया, परिसीमा की अवधि हटा दी गई है, दावा याचिका जो दायर की गई है और इस न्यायालय तक चल रही है, उसे परिसीमा के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

दूसरा फैसला जिस पर निर्भरता रखी गई थी, वह था द न्यू इण्डिया इंश्योरेंस क.लि. बनाम सी. पदमा, (2003) 7 एस.सी.सी. 713, जिसमें भी, प्रकरण को निम्नानुसार अवलोकन करके उसी तर्ज पर निर्णय दिया गया थाः

> "10. धन्नालाल के मामले में निर्धारित अनुपात वर्तमान मामले के तथ्यों पर पूरी ताकत से लागू होता है। जब दावा याचिका दायर की गई थी तो धारा 166 की उपधारा (3) को हटा दिया गया था। इस प्रकार, ट्रिब्यूनल उस तारीख, जिस दिन दुर्घटना हुई थी, को ध्यान में रखे बिना दावा याचिका पर विचार करने के लिए बाध्य था। इस स्थिति का सामना करते हुए, श्री कपूर ने तर्क प्रस्तुत किया कि धन्नालाल का मामला साधारण खंड अधिनियम की धारा 6-ए पर विचार नहीं करता है और इसलिए, इस पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। निस्संदेह साधारण खंड अधिनियम की धारा 6-ए यह प्रावधान करती है कि किसी प्रावधान के निरसन से निरस्त किए गए प्रावधान की निरंतरता और निरसन के समय उसके संचालन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। हालाँकि, यह "जब तक कि कोई अलग आशय प्रकट न हो" के अधीन है।

धन्नालाल के मामले में धारा 166 की उपधारा (3) को हटाने का कारण बताया गया है। यह नोट किया गया है कि संसद को एहसास हुआ कि यदि दावा याचिका केवल परिसीमा के आधार पर खारिज कर दी गई तो दुर्घटनाओं के पीड़ितों के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों के साथ गंभीर अन्याय और क्षति होगी। इस प्रकार "अलग आशय" स्पष्ट रूप से प्रकट होता है और साधारण खंड अधिनियम की धारा 6ए लागू नहीं होगी।

11. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री कपूर ने इस न्यायालय द्वारा विनोद गुरुदास रायकर बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एआईआर 1991 एससी 2156 में दिए गए फैसले पर भरोसा जताया है। उस मामले के तथ्य यह थे कि अपीलकर्ता एक दुर्घटना, जो 22.1.1989 को घटी, मैं घायल हो गया था। अपीलकर्ता की दावा याचिका 15.3.1990 को देरी की माफी की प्रार्थना के साथ दायर की गई थी| ट्रिब्यूनल ने माना कि 1.7.1989 को लागू हुए नए मोटर वाहन अधिनियम की धारा 166 की उप-धारा (3) के मद्देनजर, छह महीने से अधिक की देरी को माफ नहीं किया जा सकता है। उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय ने प्रतिपादित किया कि अपीलकर्ता का

मामला नए अधिनियम के अंतर्गत आता है और छह महीने से अधिक की देरी को माफ नहीं किया जा सकता है। हमारे विचार में, विनोद गुरुदास मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों से भिन्न हैं, जैसा कि ऊपर देखा गया है।

12. अपीलार्थी के विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि चूंकि विधायिका द्वारा कोई परिसीमा अवधि निर्धारित नहीं की गई है, इसलिए परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 को लागू किया जा सकता है, अन्यथा, उनके अनुसार, पुराने दावों को प्रोत्साहित किया जाएगा जिससे परिसीमा की अवधि निर्धारित न होने के कारण मुकदमेबाजी की बहुलता हो जाएगी। हम अपीलार्थी के तर्क को एक से अधिक कारणों से स्वीकार करने में असमर्थ हैं। प्रथमतः मोटर वाहन अधिनियम जैसे अधिनियम एक लाभकारी कानून है, जिसका उद्देश्य पीड़ितों या उनके परिवारों को राहत प्रदान करना है, यदि अन्यथा दावा सच्चा पाया जाता है। दूसरा, यह एक स्व-निहित अधिनियम है जो आवेदन दाखिल करने का तरीका, पालन की जाने वाली प्रक्रिया और अवार्ड पारित करने को निर्धारित करता है। संसद ने, अपने विवेक से, परिसीमा के आधार पर दावा याचिकाओं को खारिज करने से दुर्घटनाओं मे मरने वाले/शारीरिक चोटों से ग्रसित पीड़ितों के उत्तराधिकारियों और कानूनी प्रतिनिधियों के साथ होने वाले गंभीर अन्याय और क्षति को महसूस किया और उसी लिए धारा 166 की उप-धारा (3), जो दावा याचिका दायर करने के लिए परिसीमा की अवधि प्रदान

करती है, को हटा दिया और विधानमंडल का इरादा मोटर दुर्घटनाओं के पीड़ितों और परिवारों को परिसीमा की तकनीकीताओं से प्रभावित हुए बिना प्रभावी राहत देना है, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 137 को लागू करने से विधानमंडल की मंशा विफल हो जाएगी।"

इस न्यायालय द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्धारण के आधार पर, उच्च न्यायालय अपने विवादित आदेश दिनांकित 07.07.2015 द्वारा, इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि जब 23.02.2005 पर दावा याचिका दायर की गई थी, तब कोई परिसीमा अवधि नहीं होने के कारण उसे केवल देरी के कारण खारिज नहीं किया जा सकता था।

8. उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित आदेश 07.07.2015 से असंतुष्ट होकर मेसर्स पुरोहित एंड कंपनी ने यह अपील दायर करके इस अदालत में पहुंची है।

9. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने एकमात्र तर्क प्रसतुत किया कि भले ही मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण में मुआवजे के लिए दावा (मोटर वाहन अधिनियम, 1988 के प्रावधानों के तहत) करने के लिए परिभाषित परिसीमा अविध नहीं हो, फिर भी एक दावेदार को उचित समय के भीतर इस तरह का दावा करने के लिए अदालत का दरवाजा खटखटाना चाहिए। यह प्रस्तुत किया गया था कि कुछ समय के बाद, दावा पुराना हो जाएगा

और इसे एक मृत दावे के रूप में माना जाएगा। इस तरह के दावे को एक जीवित दावे के रूप में नहीं माना जा सकता था। उन स्थितियों को प्रदर्शित करने के लिए जब एक दुर्घटना के दावे को अब एक जीवित दावा नहीं माना जाएगा, उदाहरण के लिए यह प्रस्तुत किया गया था कि इस दिए गए मामले में जब प्रतिद्वंद्वी दावे को स्थापित करने के लिए साक्ष्य केवल समय बीतने के कारण उपलब्ध नहीं होंगे। या तो, समय बीतने के कारण गवाह उपलब्ध नहीं होंगे, या सुलभ नहीं होंगे, जिसके परिणामस्वरूप स्मृति समाप्त हो जाएगी और ऐसी स्थिति होगी जिसमें सच्चा सबूत अब दर्ज नहीं किया जा सकता है। तर्क यह था कि ऐसी पृष्ठभूमि में, संबंधित न्यायालय के लिए यह निर्धारित करना अनिवार्य था कि क्या किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उस तारीख को, दावे को जीवित दावे के रूप में माना जा सकता है, जब मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका दायर की गई थी।

10. अपने तर्कों के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान वकील ने निगम बैंक बनाम नवीन जे. शाह, (2000) 2 एससीसी 628 प्रस्तुत किया, जिसमें मुआवजे के लिए दावा उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत पेश किया गया था, जिसमें भी कोई परिसीमा अवधि (जब दावा पेश किया गया था, तब) विहित नहीं थी, उस मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियों को दर्ज किया थाः

"12. हम आगे देख सकते हैं कि यहाँ एक और मजबूत कारण है कि क्यों प्रत्यर्थी द्वारा किया गया दावा मंजूर नहीं किया जाना चाहिए था। विचाराधीन लेन-देन वर्ष 1979 और 1981 में हुआ था। प्रेषिति से देय राशि की वसूली में कठिनाइयाँ उस समय भी स्पष्ट हो गई जब निगम के समक्ष दावा किया गया था और दावा दिनांक 19-12-1982 को ही किया गया था। आयोग के समक्ष याचिका 25 सितंबर 1992 को दायर की गई थी, जो स्पष्ट रूप से निगम के समक्ष दावा किए जाने के एक दशक बाद है। इतने समय बाद प्रत्यर्थी द्वारा दावा दायर नहीं किया जा सकता था। वास्तव में प्रासंगिक समय में आयोग के समक्ष दावा पेश करने के लिए उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत कोई परीसीमा अवधि नहीं थी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि दावा अनुचित रूप से लंबे विलंब के बाद भी किया जा सकता है। आयोग ने इस तर्क को, यह ध्यान मे रखते हुए कि भारतीय रिज़र्व बैंक को देय विदेशी मुद्रा अभी भी देय थी और इसलिए दावा जीवित है, पूरी तरह से गलत दृष्टिकोण से खारिज कर दिया है। प्रत्यर्थी का दावा बैंक से है। किसी भी दर पर, जैसा कि पहले कहा गया है, जब निगम से हुए नुकसान की क्षतिपूर्ति के लिए दावा किया

गया था, तो पार्टियों को विदेशी बैंक से ऐसी राशि एकत्र करने के लिए और इंतजार करने की निरर्थकता के बारे में स्पष्ट था। उन परिस्थितियों में, यदि दावा किया ही जाना था, तो उसके बाद उचित समय के भीतर किया जाना चाहिए था। दावा करने का उचित समय क्या है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। विधायी ज्ञान के अनुसार, पैसे के लिए दावा करने के लिए परिसीमा अधिनियम के तहत तीन साल की अवधि उचित समय के रूप में निर्धारित की गई है। हमारा मानना है कि इस प्रकृति के किसी मामले में दावा दायर करने के लिए उचित समय की गणना के लिए उस अवधि को अपनाया जाना चाहिए। इस कारण से भी हम पाते हैं कि प्रत्यर्थी द्वारा किया गया दावा आयोग द्वारा खारिज कर दिया जाना चाहिए था।"

यह उल्लेख करना उचित होगा कि उपरोक्त निर्णय में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के तहत उठाए गए दावे में 10 साल की अवधि की देरी हुई थी, और भले ही, परिसीमा की कोई अवधि निर्धारित नहीं की गई थी, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह पोषणीय नहीं था।

11. हरियाणा राज्य सहकारी समिति भूमि विकास बैंक बनाम नीलम (2005) 5 एससीसी 91 पर भी निर्भरता रखी गई, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

> "17. नेदुंगडी बैंक लिमिटेड (2001) 6 एससीसी 222 में इस न्यायालय की एक पीठ, जहां एस. साघिर अहमद एक सदस्य थे [लॉर्डशिप अजायब सिंह (सुप्रा) में भी एक सदस्य थे], ने कहा: (एससीसी पीपी. 459-60, पृष्ट 6)
>
> "6. कानून समुचित सरकार के लिए अधिनियम की धारा 10 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं करता है । ऐसा नहीं है कि इस शक्ति का प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है और उन मामलों को पुनर्जीवित करने के लिए किया जा सकता है जो पहले ही सुलझ चुके हैं। शक्ति का प्रयोग प्रासंगिक और तर्कसंगत तरीके से किया जाना चाहिए। हमें ऐसा कोई तर्कसंगत आधार नहीं दिखता है जिसके आधार पर केंद्र सरकार ने प्रत्यर्थी को सेवा से बर्खास्त करने के आदेश के लगभग सात साल बीत जाने के बाद इस मामले में शक्तियों का प्रयोग किया हो। जिस समय निर्देश किया गया था उस समय कोई औद्योगिक विवाद अस्तित्व में नहीं था या यह

भी कहा जा सकता था कि इसकी आशंका थी। जो विवाद पुराना है, वह अधिनियम की धारा 10 के तहत निर्देश का विषय नहीं हो सकता है। कब किसी विवाद को पुराना कहा जा सकता है यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जब मामला तय हो गया है, तो यह हमें असंगत प्रतीत होता है कि वर्तमान मामले जैसी परिस्थितियों में अधिनियम की धारा 10 के तहत निर्देश किया जाये। वास्तव में यह कहा जा सकता है कहा कि जिस समय प्रश्न का निर्देश किया गया था उस समय कोई विवाद लंबित नहीं था।"

18. यह सामान्य बात है कि परिपूर्ण क्षेत्राधिकार वाली अदालतों और न्यायाधिकरणों के पास पक्षकारों को उचित राहत देने की विवेकाधीन शक्ति है। औद्योगिक विवाद अधिनियम का उद्देश्य और लक्ष्य श्रमिक को सामाजिक न्याय प्रदान करना हो सकता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं होगा कि श्रमिक के आचरण को देखे बिना वह अपने आप से राहत का हकदार होगा। विबंधन, अधित्याग और मौन स्वीकृति जैसे प्रक्रियात्मक कानून औद्योगिक कार्यवाही पर समान रूप से लागू होते हैं। कुछ स्थितियों में एक व्यक्ति को स्वीकृति सब साइलेंटियो के सिद्धांत से बंधा हुआ भी माना जा सकता है। यहां प्रतिवादी ने उचित समय के भीतर उसकी सेवाओं की समाप्ति पर सवाल उठाते हुए कोई औद्योगिक

विवाद नहीं उठाया। उसने एक वैकल्पिक रोजगार भी स्वीकार कर लिया और 10.08.1988 से उसमें कार्यरत हैं। अपीलकर्ता द्वारा उठाई गई याचिका का हवाला देते हुए श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के समक्ष दायर उसके प्रतिवेदन में कहा गया था कि वह 10.8.1988 से हुडा में लाभप्रद रूप से कार्यरत है और वहाँ उसकी सेवाओं को नियमित कर दिया गया है, यह कहा गया था:

> "6. आवेदक श्रमिक ने पहले ही एएलसी सह सुलह अधिकारी को प्रतिवेदन दिया था, जिसमें कहा गया था कि वह हुडा मे 10.08.1988 से दैनिक वेतन के आधार पर क्लर्क-सह-टाइपिस्ट के रूप में नियुक्त की गई थी। आवेदक श्रमिक को प्रबंधन की सेवा में आने का अधिकार है और वह उनसे जुड़ने की इच्छुक है।"

19. इसलिए, उसने इस बात से इनकार या विवाद नहीं किया कि उसे नियमित रूप से नियोजित किया गया था या उसकी सेवाओं को नियमित किया गया था। उसने केवल अपीलकर्ता की सेवा में शामिल होने के अपने अधिकार का प्रयोग किया।

20. यह सच है कि प्रत्यर्थी ने तीन साल की अवधि के भीतर एक रिट याचिका दायर की थी, लेकिन निर्विवाद रूप से यह तभी दायर की गई थी जब अन्य श्रमिकों को राज्य द्वारा इस संबंध में किए गये निर्देश में श्रम

न्यायालय से समान राहत मिली थी। स्पष्ट रूप से रिट याचिका में वह अपना कानूनी अधिकार स्थापित करने की स्थिति में नहीं थी जिससे अपीलकर्ता को उसे सेवा में बहाल करने का निर्देश देने वाली या परमादेश की प्रकृति की रिट प्राप्त की जा सके। उन्हें संभवतः रिट याचिका वापस लेने की सलाह दी गई क्योंकि उन्हें उक्त कार्यवाही में कोई राहत नहीं मिलनी थी। यहां तक कि उच्च न्यायालय भी देरी के आधार पर रिट याचिका को खारिज कर सकता था या अन्यथा अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकता था। इसलिए, सात साल से अधिक समय के बाद श्रम न्यायालय का रुख करने में प्रत्यर्थी के आचरण को श्रम न्यायालय ने उसे कोई राहत देने से इनकार करने के लिए एक प्रासंगिक कारक माना था। श्रम न्यायालय की ओर से इस तरह के विचार को अप्रासंगिक नहीं कहा जा सकता। उपर्युक्त स्थिति में श्रम न्यायालय के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने अविवेकपूर्ण और मनमाने ढंग से अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है जिसमे उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर हस्तक्षेप करने की आवश्यकता हो।

21. मामला अलग हो सकता था यदि प्रत्यर्थी को अपीलकर्ता द्वारा एक स्थायी रिक्ति पर नियुक्त किया गया होता।

22. हुडा और अपीलकर्ता दोनों वैधानिक संगठन हैं। अपीलार्थी के साथ प्रत्यर्थी की सेवा तदर्थ थी। उसने अपीलकर्ता को केवल एक वर्ष तीन महीने की अवधि के लिए सेवा दी; जबकि वह सोलह साल से अधिक समय से हुडा में सेवाएं दे रही थीं। भले ही उसे अपीलकर्ता की सेवाओं में बिना बकाया वेतन के बहाल करने का निर्देश दिया गया हो, जैसा कि उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया था, वह तदर्थ ही रहेगा और इस प्रकार, औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों के अनुपालन पर उसकी सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। यह ध्यान रखना भी प्रासंगिक है कि अपीलकर्ता-बैंक के पास अब कोई नियमित रिक्ति हो भी सकती है और नहीं भी। हमने यहां पहले देखा है कि वर्ष 1996 में, रिक्तियों को भर दिया गया था और एक तीसरे पक्ष का अधिकार बनाया गया था। हमें यह नहीं बताया गया है कि कोई रिक्ति मौजूद है। पार्टियों के बीच समानता पर विचार करने के बाद, हमारी राय है कि यह एक उपयुक्त मामला नहीं था जहां उच्च न्यायालय को श्रम न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने वाले विवेकाधीन क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करना चाहिए था।

23. उपर्युक्त कारणों से, आक्षेपित निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है, जिसे तदनुसार रद्द कर दिया गया है। यह अपील स्वीकार की जाती है. हालाँकि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं हैं।

यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि उपरोक्त निर्णय एक ऐसे मामले में दिया गया था, जिसमें औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के तहत चुनौती दी गई थी, जिसमें औद्योगिक न्यायाधिकरण से संपर्क करने के लिए कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं की गई है। उपरोक्त के बावजूद, यह अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची कि 7 साल की अवधि के बाद किया गया दावा एक जीवित दावा नहीं था और इसलिए, दावा याचिका को पोषणीय नहीं माना जाता है।

12. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 और औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के तहत दिए गए निर्णयों को सादृश्य देखते हुए अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील का यह निवेदन था कि भले ही मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 166 के संशोधन (14.11.1994 से प्रभावी) जिसके तहत धारा 166 की उप-धारा (3) को हटा दिया गया है, के बाद परिसीमा की कोई अवधि निर्धारित नहीं है, फिर भी यह निर्धारित करना अनिवार्य होगा कि क्या उस समय जब दावेदार ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से सम्पर्क किया, तब दावा एक जीवित और चलित दावा था।

13. हम संतुष्ट हैं, कि अपीलार्थी के लिए विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत तर्क स्वीकृति के योग्य है। जिन निर्णयों पर उच्च न्यायालय ने भरोसा किया था, और जिन पर प्रत्यर्थियों ने जोर दिया है, हमारे सुविचारित

विचार में, वे अपीलार्थी की ओर से प्रस्तुत किए गए निवेदन की स्वीकृति में कोई बाधा नहीं हैं। हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि धन्नालाल के मामले (ऊपर) में मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से संपर्क करने में अत्यधिक देरी के सवाल पर विचार नहीं किया गया था। दूसरे निर्णय सी. पदमा (ऊपर) के मामले में इस पर विचार किया गया था और सी. पदमा के मामले में, पैराग्राफ 12 में पहला निष्कर्ष निकाला गया था। "यदि अन्यथा दावा वास्तविक पाया जाता है।" हमारा विचार है कि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष पेश किया गया दावा वास्तविक माना जा सकता है, जब तक कि यह एक जीवित और चलित दावा है। हम अपीलार्थी के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत निर्णय में व्यक्त कानून की घोषित स्थिति को स्वीकार करने में संतुष्ट हैं। ऐसा नहीं है कि दुर्घटना होने के पश्चात किसी भी समय मुआवजे के लिए दावा करने के लिए मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण में पहुंच सकते हैं। संबंधित व्यक्ति को तर्कसंगत समय के भीतर न्यायाधिकरण के समक्ष आना चाहिए।

14. तर्कसंगतता का सवाल स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्य और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। तथापि, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण से संपर्क करने के लिए, किसी अन्य तथ्यों के संदर्भ के बिना भी, 28 वर्षों की देरी को प्रथम दृष्टया तर्कसंगत अवधि नहीं माना जा सकता है। 28 वर्ष के अंतराल के बाद कार्यवाही शुरू करने के लिए प्रत्यर्थियों का एकमात्र स्पष्टीकरण न्यायाधिकरण के समक्ष

दावेदारों द्वारा दायर देरी की माफी के लिए आवेदन में उल्लेखित पैराग्राफ 4 से दृष्टिगत होता है। उपर्युक्त पैराग्राफ 4 को नीचे दिया गया हैः

> "4. कि याचिकाकर्ता गरीब व्यक्ति हैं और उनके पास कानून का ज्ञान नहीं है। साथ ही उत्तरदाता ने किसी भी मुआवजे के लिए एक पाई का भी भुगतान नहीं किया है ।"

15. प्रत्यर्थीगण द्वारा न्यायाधिकरण के समक्ष 28 वर्षों बाद दावा पेश करने के संदर्भ में दिये गये स्पष्टीकरण पर गहनता से विचार करने के बाद हमारा यह मत है कि प्रस्तुत स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया जा सकता। निस्संदेह इस मामले के तथ्य और परिस्थितिओं में दावा (दिनांक 02.02.1977 को दुर्घटना के संदर्भ में) पुराना है और जब प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 23.02.2005 को दावा याचिका पेश कर न्यायाधिकरण को संपर्क किया था, उस समय उक्त दावे को मृत दावे की तरह मनाना चाहिए था।

16. यहाँ ऊपर दर्ज किए गये कारणों को ध्यान में रखते हुए हम दिनांक 07.07.2015 के विवादित आदेश को रद्द करते है और यह प्रतिपादित करते हुए कि जब प्रत्यर्थीगण ने मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष दावा प्रस्तुत किया था, तब दावा जीवित नहीं था, इस अपील की अनुमति देते हैं।

17. इस आदेश को समाप्त करने से पहले, यह ध्यान देना प्रासंगिक है कि प्रस्ताव पीठ के आदेश दिनांक 14.09.2015 द्वारा अपीलकर्ता को

प्रत्यर्थीगण को मुकदमेबाजी खर्च के लिए 25,000/- रुपये की राशि जमा करने का निर्देश दिया गया था। उपरोक्त राशि वास्तव में जमा कराई गई थी (जैसा कि प्रस्ताव पीठ के आदेश दिनांक 12.07.2016 में देखा गया है)। चूंकि राशि जमा कराई गई थी और प्रत्यर्थीगण को देय थी, हम मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में रजिस्ट्री को यह आदेशित करना उचित मानते हैं कि उपरोक्त 25000/- रूपये की राशि प्रत्यर्थीगण संख्या 1 के नाम से चैक द्वारा प्रत्यर्थीगण को हस्तांतरित कर दी जावे।

कल्पना के. त्रिपाठी अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी सुनिल गोस्वामी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण : यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।